भारतीय निर्यात-आयात बैंक

34वां स्थापना दिवस वार्षिक व्याख्यान

“सामाजिक नीति की पुनर्रचना”

वक्ता

प्रो. अभिजीत बनर्जी

फोर्ड फाउंडेशन इंटरनेशनल
प्रोफेसर ऑफ़ इकोनॉमिक्स,
मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी

एक्ज़िम बैंक
EXIM BANK
भारतीय निर्यात-आयात बैंक
EXPORT-IMPORT BANK OF INDIA

भारतीय निर्यात–आयात बैंक

34वां स्थापना दिवस वार्षिक व्याख्यान

बुधवार, 09 जनवरी, 2019 को शाम 6.00 बजे

क्रिस्टल रूम,
दि ताज महल पैलेस होटल, मुंबई

भारतीय निर्यात–आयात बैंक की अनुमति के बिना इस व्याख्यान के किसी भी भाग को दोबारा तैयार नहीं किया जा सकता है। इस दस्तावेज़ में मौजूद विचार और व्याख्याएँ लेखक की हैं, भारतीय निर्यात–आयात बैंक की नहीं।

सामाजिक नीति की पुनर्रचना

प्रो. अभिजीत बनर्जी

मुंबई के इस खूबसूरत होटल के इस खूबसूरत हॉल में इतने खूबसूरत मौसम में, ऐसी प्रतिष्ठित संस्था के लिए बोलना, आपसे रू–ब–रू होना मेरे लिए सम्मान और हर्ष का विषय है। अगली कुछ देर के लिए बाहर के इस खूबसूरत मौसम के आनंद से आपको महरूम करने के लिए माफी चाहूंगा।

तो आज हम सामाजिक नीतियों पर बात करेंगे। इस मुद्दे पर बात करने के लिए यह सही समय है। क्योंकि भारत में आम चुनाव सिर पर हैं और चुनावी मौसम में सामाजिक नीतियों में दिलचस्पी बढ़ जाती है। यहां तक कि बिना सोचे–समझे ही सामाजिक नीतियां बनाने के प्रलोभन भी दे दिए जाते हैं। इसलिए यह विचारों के बीजारोपण का सही समय है और मैं आज यही करने के लिए यहां उपस्थित हुआ हूं।

अपने जैसे ज्यादातर लोगों की तरह मैं इस बात से बहुत ज्यादा प्रभावित नहीं होता हूं कि दुनिया में वस्तुत: क्या होता है। लेकिन मैं अकसर सोचा करता हूं कि यदि आपके पास वे तमाम राजनीतिक शक्तियां हों, जो आप चाहते हैं, तो आप क्या करना पसंद करेंगे। मैं अपनी बात इसी विचार से शुरू करता हूं। बेशक, प्राय: ऐसा होता है कि हम जैसा सोचते हैं, असल में वह नहीं हो पाता है। और यह कतई जरूरी नहीं कि मैं जो कुछ भी कहने जा रहा हूं, वह कोई नीति ही बन जाएगी या उसका आंशिक हिस्सा ही किसी नीति का रूप ले लेगा। लेकिन यह समझना बेहतर होगा कि चीजों को कहां, किस तरह होना चाहिए और हम आज कहां हैं।

बात आर्थिक नीति से शुरू करते हैं। भारत में आर्थिक नीति का एक तय ढांचा है। यह ढांचा उस समय बनाया गया था, जब भारत की गिनती दुनिया के सबसे गरीब देशों में की जाती थी। हमने भुखमरी और सूखे जैसी विपदाओं का सामना किया और उनसे उबरे भी। हमने अपनी सामाजिक नीतियों का ताना–बाना भी इन सूखों से निपटने की योजनाओं के इर्द–गिर्द ही बुना। देश में निजी क्षेत्र छोटा था। सरकार का भी इसमें कम भरोसा था। अर्थव्यवस्था के द्वार लगभग बंद थे और यह बहुत नियंत्रित थी। ऐसे दौर में हमने अपनी सामाजिक नीति बनाई। अब यह देखना जरूरी है कि एक अर्थव्यवस्था के रूप में आज हम कहां हैं और हमारी यह स्थिति सामाजिक नीति के बारे में सोचने के हमारे तरीके को कैसे बदल सकती है।

ऐसे दौर में जब भुखमरी और सूखे को प्राथमिक संकट के रूप में देखा जाता था, सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) जैसी व्यवस्थाएं बनाना तर्कसंगत लगता है। क्योंकि इससे भुखमरी को रोकने में मदद मिली। सरकार के लिए अनाज की खरीद, परिवहन और उसे बेचने का एक पूरा बुनियादी ढांचा खड़ा करना भी निश्चित रूप से तर्कसंगत

था। क्योंकि निजी क्षेत्र पर आंख मूंदकर भरोसा नहीं किया जा सकता था। इस तरह भारतीय खाद्य निगम (एफसीआई) नाम की संस्था अस्तित्व में आई और एक पूरी व्यवस्था स्थापित की गई। इसकी एक वजह यह भी रही कि सरकार ने यह उम्मीद नहीं की थी कि वह वहीं से अनाज खरीद रही होगी, जहां उसे अनाज पहुंचाना है, क्योंकि सरकार को बाजार पर भरोसा नहीं था। दूसरा, विदेशी मुद्रा का गंभीर संकट था। आयात करना कोई विकल्प नहीं था। हमें पूरी तरह घरेलू उत्पादन पर ही निर्भर रहना था। अनाज को एक राज्य से दूसरे राज्य में पहुंचाना था और सरकार को यही करना था।

सरकार के लिए शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करना भी तर्कसंगत था। इसमें फोकस इस बात पर रखा गया कि मातृ-शिशु जीवन प्रत्याशा बढ़ाई जाए और बच्चों को स्कूलों तक लाया जाए, इसकी परवाह किए बिना कि बच्चे क्या सीखेंगे।

उस समय ये सभी प्राथमिकताएं थीं। हालांकि, मैं अपने व्याख्यान में इसी पहलू की आलोचना करने जा रहा हूं। आगे बढ़ने से पहले मैं यह स्पष्ट कर दूं कि मैं इससे पूरी तरह सहमत हूं कि उस दौर में ये सामाजिक नीतियां तर्कसंगत थीं। लेकिन मुझे लगता है कि हमें बहुत पहले इन्हें नए सिरे से बना लेना चाहिए था।

हम अब निम्न मध्यम आय वाले देश हैं। अब हमारी समस्याएं भी नई हैं। मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि हमने अपनी पुरानी समस्याएं तो सुलझा ली हैं और इसीलिए अब हमारे सामने कुछ नई तरह की समस्याएं हैं।

मुझे लगता है कि हमने इन नई समस्याओं में से कुछ एक को तो आंशिक रूप से समझ लिया है और ऐसा भी नहीं है कि मैं जो कुछ कहने जा रहा हूं, वह ऐसी कोई नई बात है, जो आपने पहले कभी सुनी ही नहीं। क्योंकि हमें कुछ तो भान है कि हमारे सामने ये समस्याएं मुंह बाए खड़ी हैं। इनमें से कुछ समस्याएं ऐसी हैं, जो हमें बेहद असुविधाजनक स्थिति में पहुंचा देती हैं, इसलिए उन्हें अनदेखा कर देना ही आसान लगता है। यही हमारी मुख्य समस्या है, जो 30 साल से चली आ रही है और हमें लगता है कि हमें अपनी नीतियों को वर्तमान के मुताबिक ढालने की जरूरत है। बहरहाल! मैं बस इतना कहना चाहता हूं कि यह नीतियों को ढालने का नहीं, बल्कि नए सिरे से दोबारा बनाने का समय है।

आज हम एक अलग मुकाम पर हैं, जहां हमें एक अलग परिवेश में नई शुरुआत करने और ऐसी सामाजिक नीति का ढांचा बनाने की जरूरत है, जो इस मुकाम के अधिक अनुरूप हो। ऐसा करते हुए हमें योजनाओं की संख्या बढ़ाने की जरूरत नहीं है। कहने का मतलब यह है कि सामाजिक समस्याओं को सुलझाने की हमारी मूल रणनीति ही एक के बाद एक नई-नई योजनाएं बनाते रहना रही है। अब गरीबी उन्मूलन को ही लीजिए। इसके लिए ही 400 से ज्यादा योजनाएं हैं। यह और बात है कि आप भारत सरकार में किसी से इन योजनाओं के नाम पूछ लें तो वे न बता पाएं। हम भी यह संख्या इसलिए जानते हैं क्योंकि विश्व बैंक ने किसी जमाने में इनका रिकॉर्ड रखना शुरू किया था। वे हर

योजना के बारे में तो नहीं जानते हैं, लेकिन वे इतना जरूर जानते हैं कि इस सूची में कम से कम 400 योजनाएं हैं। इसलिए योजनाओं की संख्या तो बहुत है। बहुत सारे सरकारी कार्यालय हैं। बहुत सी अलग–अलग पहलों के लिए छोटी–छोटी राशि के रूप में बहुत सारी रकम आवंटित की गई है। हमारे सीमित संसाधनों में से बहुत से संसाधन इनके लिए निर्धारित कर दिए गए हैं। और मैं समझता हूं कि हमें इसकी जरूरत नहीं है। हमें आज के दौर के मुताबिक अपनी प्राथमिकताएं तय करने और उन्हीं प्राथमिकताओं को आधार बनाकर आगे बढ़ने की जरूरत है।

सबसे पहले मैं अपनी बात यह मानते हुए शुरू करना चाहता हूं कि प्रशासनिक दक्षता बड़ा दुर्लभ संसाधन है, शायद पैसे से भी अधिक दुर्लभ। किसी भी समस्या को सुलझाने के लिए प्रशासनिक दक्षता बढ़ाने के बजाय पानी की तरह पैसा बहाना ज्यादा आसान है। यह स्थिति विशेष रूप से इसलिए है, क्योंकि हमारे पास प्रशासनिक दक्षता बढ़ाने का कोई तंत्र नहीं है। अर्थव्यवस्था को बढ़ाने से ज्यादा हम प्रशासनिक दक्षता बढ़ाने के मामले में लड़खड़ाते हैं। क्योंकि बढ़ती अर्थव्यवस्था के साथ प्रशासनिक दक्षता कहीं पीछे छूट जाती है।

दूसरी बात यह कि, प्रशासनिक दक्षता के साथ–साथ संसाधनों की भी कमी है। हमें अपनी कर वसूली बढ़ाने की जरूरत है, खासकर प्रत्यक्ष कर वसूली। हमें अपना कर आधार विस्तृत करने की जरूरत है, क्योंकि यह तकरीबन वैसा ही है, जैसा 25 साल पहले था। प्रत्यक्ष करों के लिए, जीडीपी की तुलना में कर आधार का अनुपात नहीं बढ़ा है। हम वहीं हैं, जहां 25 साल पहले थे। हालांकि प्रवर्तन की स्थिति पहले से बेहतर हुई है, पर उतनी नहीं, जितनी हम चाहते थे। फिर अपनी अर्थव्यवस्था को देखते हुए हम जितने कर की वसूली का अनुमान लगाते हैं और जितने कर की वसूली वास्तव में कर पाते हैं, इसमें बड़ा अंतर बना रहता है। संसाधनों के अभाव की स्थिति को देखते हुए हमें केवल अपने शहरों में ही 3 ट्रिलियन यूएस डॉलर के निवेश की जरूरत है। इसलिए संसाधनों का अभाव वाकई बहुत ज्यादा है।

इन सबके मद्देनजर, मैं इस पर ज्यादा बात नहीं करूंगा, क्योंकि मैं चाहता हूं कि आप इस बारे में सोचें कि हम 'मध्यम आय वाले जाल' में फंसने जा रहे हैं। इस 'मध्यम आय वाले जाल' का मतलब है कि कुछ देशों की वृद्धि एक निश्चित बिंदु तक होने के बाद रुक जाती है। हम तेजी से बढ़ रहे हैं, लेकिन मैं डंके की चोट पर यह कह सकता हूं कि हम इस तीव्र वृद्धि के सही कारणों को शायद ही जानते हैं। यदि आप वैश्विक परिदृश्य पर एक नजर डालें तो देखेंगे कि हमारी मानव पूंजी बहुत उच्च गुणवत्ता वाली नहीं है। हमारा बुनियादी ढांचा भी उच्च गुणवत्ता का नहीं है। हमारा पर्यावरण लगातार प्रदूषित हो रहा है और हम इस सबके बावजूद तरक्की कर रहे हैं। मैं समझता हूं कि हमारी तरक्की की एक वजह हमारे संसाधनों का त्रुटिपूर्ण आवंटन और पक्षपातपूर्ण रवैया भी है, जो सिर्फ व्यवसायों के लिए ही अवसरों का सृजन करता है। हमारे पास उद्यमी प्रतिभाएं बहुत हैं, जो इन अवसरों को भुना लेती हैं। जैसे ही आप इसे अपना शुरुआती बिंदु मानते हैं, आपको यह चिंता सताने लगती है कि जैसे ही ये अवसर खत्म होंगे, हमारी वृद्धि उतनी ही तेजी से धीमी पड़ सकती है।

हालांकि, अगर ऐसा होता है तो भारत इस तरह का पहला देश नहीं होगा। 1961 से 1980 के बीच ब्राजील दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था वाला देश था। इस पूरी अवधि के दौरान इसकी वृद्धि दर 9 प्रतिशत रही। फिर 1980 में इसकी वृद्धि रुक गई, जो वास्तव में दोबारा कभी शुरू ही नहीं हो पाई। ऐसी मंदी बहुत तेजी से आ सकती है। यहां तक कि मात्र एक वर्ष की अवधि में भी और बहुत मुमकिन है कि दोबारा कभी वह अपनी पहले वाली रफ्तार न पकड़ पाए। जापान की कहानी भी कुछ ऐसी ही है। ये सब बातें इसी बात की ओर संकेत करती हैं कि वृद्धि बहुत तेजी से रुक सकती है। हालांकि मेरा मकसद आपके और हम सबके भीतर डर पैदा करना नहीं है। मैं तो बस इतना कहना चाहता हूं कि हमें इस वृद्धि को उपहार न समझकर इसके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। इसलिए, हमें अपने आर्थिक ढांचे को दुरुस्त करने के बारे में सोचने की जरूरत है। सिर्फ इसलिए नहीं कि यह वंचित वर्ग के लिए अच्छा है, बल्कि इसलिए कि हम प्रगति पथ पर लगातार बढ़ते रहना चाहते हैं। अब मैं अपने प्रमुख मुद्दों पर आता हूं।

1. शिक्षा

शिक्षा एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें हमने वाकई कुछ उल्लेखनीय उपलब्धियां हासिल की हैं। वस्तुत: ऐसी उपलब्धियां जिनके बारे में हमने सोचा नहीं था। 90 के दशक के मध्य में भी हम उन बच्चों के बारे में सोच रहे थे, जो स्कूल नहीं जाते थे। क्योंकि वे बच्चे बालश्रम में संलग्न थे और उनके माता-पिता उन्हें स्कूल नहीं भेजते थे। कुछ एक इलाकों को छोड़ दें तो आज भारत में बच्चा-बच्चा स्कूल जाता है। 12 से कम उम्र के सभी बच्चों का दाखिला स्कूल में है। लड़के-लड़कियों में फर्क नहीं किया जाता है। यह भी सही है कि इनमें से काफी संख्या में बच्चे माध्यमिक स्तर तक स्कूल जा रहे हैं। यह अच्छी खबर है और मैं इस बारे में अन्यथा कुछ नहीं कहना चाहता हूं।

लेकिन मैं समझता हूं कि स्कूल जाने वाले ये बच्चे कुछ सीख नहीं रहे हैं। पांचवीं कक्षा में पढ़ने वाले आधे से ज्यादा बच्चे गणित में दूसरी कक्षा के बच्चों के स्तर के हैं। मातृभाषा में भी उनकी यही स्थिति है। अफसोस इस बात का है कि इस स्थिति में सुधार दिखाई नहीं देता है। जो बच्चे दूसरी कक्षा में पीछे रह गए, वे पांचवीं में और पिछड़ गए और आठवीं तक आते-आते और अधिक पिछड़ गए। इसलिए पिछड़ने की प्रवृत्ति कायम है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक टेस्ट होता है- पीसा (अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थी मूल्यांकन कार्यक्रम)। हमारा पीसा स्कोर इतना खराब है कि भारत सरकार ने इसमें सहभागिता ही बंद कर दी। फिर जब विश्व बैंक की रिपोर्ट में कहा जाता है कि हमारी मानव पूंजी बांग्लादेश से भी बदतर है, तो इस पर शिकवे जताए जाते हैं।

मैं समझता हूं कि समस्या यह है कि समस्या का उपाय ही अपने आप में गलत है। हमारे देश में शिक्षा का अधिकार कानून है। यह कानून जाहिर तौर पर शिक्षा क्षेत्र की समस्या के समाधान के लिए लागू किया गया है। कानून कहता है कि हमें बेहतर बुनियादी ढांचे, अच्छा वेतन पाने वाले शिक्षकों और उन शिक्षकों को और अधिक प्रशिक्षित करने की जरूरत है। इस तरह हमारी शिक्षा प्रणाली दुरुस्त होगी। यह सब हुआ, फिर भी शिक्षा प्रणाली दुरुस्त नहीं हो पाई।

हमारे शिक्षक देश के प्रति व्यक्ति जीडीपी के अनुपात में दुनिया में सबसे अच्छा वेतन पाने वाले शिक्षकों में शामिल हैं। हमारे शिक्षक 50,000–60,000 रुपए प्रति माह पाते हैं। ऐसी नौकरियां मिलनी भी मुश्किल होती हैं और इसे सबसे अच्छी नौकरियों में गिना जाता है। अच्छा वेतन, अच्छे लाभ।

अच्छे वेतन से अच्छे परिणाम वाली बात को परखने के लिए बड़े स्तर पर एक सर्वे किया गया। इसमें कुछ स्कूलों को यादृच्छिक रूप से चुना गया। उन स्कूलों के शिक्षकों का वेतन दोगुना कर दिया गया। लेकिन बच्चों के परीक्षा परिणामों पर इसका प्रभाव शून्य रहा। इसलिए 'अच्छा वेतन दो, अच्छे परिणाम लो' के इस दृष्टिकोण से भी मुझे निराशा होती है। स्कूलों के बुनियादी ढांचे में सुधार और शिक्षकों का प्रशिक्षण दोगुना करने संबंधी कई अध्ययन हुए हैं, जो विश्वसनीय परिणाम पाने के लिए बहुत सावधानीपूर्वक किए गए हैं। लेकिन ढाक के वही तीन पात– बच्चों पर असर शून्य।

एक वैकल्पिक उपाय वह भी है जो भारत में काफी सुनाई पड़ता रहता है, कि हमें और अधिक प्रोत्साहनों की जरूरत है। सार यही है कि भारत के कई राज्यों में 50% बच्चे आज निजी स्कूलों में हैं। निजी स्कूलों के संबंध में एक बड़ा ही दिलचस्प पहलू है कि सरकारी स्कूलों की तुलना में एक निजी स्कूल को चलाना काफी सस्ता पड़ता है। एक सरकारी स्कूल में एक बच्चे पर निजी स्कूल की तुलना में 2 से 5 गुना ज्यादा खर्च आता है।

आंध्र प्रदेश में एक अध्ययन हुआ था। यह इसलिए भी अहमियत रखता है कि आंध्र प्रदेश भारत के उन चंद राज्यों में से एक है, जहां की शिक्षा प्रणाली तुलनात्मक रूप से बेहतर है। इस अध्ययन के लिए बड़ी संख्या में स्कूली बच्चों को निजी स्कूलों में जाने के लिए वाउचर दिए गए थे। चूंकि उन बच्चों को यादृच्छिक रूप से चुना गया था, इसलिए वे बच्चे दूसरों के अनुरूप थे। फिर इन बच्चों के परीक्षा में प्राप्त अंक देखे गए। नतीजा सिफर निजी स्कूल भी सरकारी स्कूलों जितने ही खराब हैं, इसलिए उन्हें प्रोत्साहन देने की केवल एक ही वजह हो सकती है कि उन्हें चलाना सस्ता होता है।

शिक्षा का अधिकार कानून ऐसे है, जैसे उन्हें निजी स्कूलों का सस्ता होना पसंद न आया हो और वे चाहते हैं कि निजी स्कूल भी अपने शिक्षकों को बेहतर वेतन दें, और अधिक योग्य शिक्षक भर्ती करें और स्कूलों का बुनियादी ढांचा और बेहतर बनाएं। हालांकि इनमें से किसी भी बिंदु का अध्यापन की गुणवत्ता से कोई लेना–देना नहीं रहा। इससे निजी स्कूलों का व्यवसाय ठप पड़ जाएगा। इसलिए मैं समझता हूं कि शिक्षा का अधिकार कानून निजी स्कूलों की इस चेष्टा को रोकने का प्रयास है, जो आंशिक रूप से सफल भी रहा है। एक मोटा–मोटा अनुमान है कि इस कानून के अस्तित्व में आने के बाद बुनियादी ढांचागत अपेक्षाएं पूरी न कर पाने के चलते करीब 10,000 निजी स्कूल बंद हो गए। यह मानने का ऐसा कोई कारण नहीं है कि इससे शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता कुछ बेहतर होने वाली है, बल्कि मुझे लगता है कि यह शिक्षा की गुणवत्ता को नुकसान ही पहुंचाएगा।

हमने अब्दुल लतीफ जमील पॉवर्टी एक्शन लैब में काफी काम किया है और इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि असल समस्या अध्यापन का औपनिवेशिक मॉडल है। हम बच्चे की पृष्ठभूमि और शिक्षक की पढ़ाने की क्षमता को जाने बिना ही सभी बच्चों को एक ही पाठ्यक्रम से पढ़ाते जाते हैं, जो अपने आप में एक संपूर्ण मानक है। नतीजा यह होता है कि बच्चों को समझ नहीं आता है। समझ न आए तो उन्हें दोबारा समझने के लिए मदद भी नहीं की जाती है। आप शिक्षकों से पूछिए कि वे बच्चों की मदद क्यों नहीं करते हैं, वे इन बच्चों के प्रति निराशाजनक स्वर में अकसर यही कहते हैं कि ये 'कमजोर' बालक हैं।

स्कूलों में ऐसे मानक बनाना, जहां पाठ्यक्रम को भगवान के बराबर तवज्जो दी जाती है, जहां बहुत से ऐसे बच्चे होते हैं, जो अपनी पीढ़ियों में पहली बार साक्षर हो रहे होते हैं, जिनके माता-पिता उन्हें बेहतर तरीके से पढ़ाने की स्थिति में नहीं होते हैं, उन बच्चों के पाठ्यक्रम में पिछड़ने की संभावनाएं बनी रहती हैं।

हमने सात राज्यों में बड़े पैमाने पर प्रयोग किए और हमने पाया कि यदि बच्चे को वही पढ़ाया जाए, जो उसके लिए उस समय, उस स्थिति में जानना जरूरी है, तो बच्चे चीजों को तेजी से पकड़ते हैं। हम अपनी शिक्षा प्रणाली में सुधार इसलिए नहीं कर पाते, क्योंकि हमने ऐसा नहीं करने का फैसला कर लिया है, न कि इसलिए कि ऐसा करना संभव नहीं है। ये प्रयोग कुछ स्वयंसेवियों द्वारा उन स्कूलों में जाकर किए गए थे, जहां उन्होंने 3 महीने तक बच्चों को पढ़ाया। हमने पाया कि बच्चों में इस प्रयोग के दौरान पिछले दो वर्षों की तुलना में ज्यादा प्रगति देखने को मिली।

यह अपने आप में एक विलक्षण अंतर है, क्योंकि हम ऐसी चीजों पर काम करते रहते हैं, जो काम नहीं आतीं, जबकि हमारे पास समस्या का एक आसान समाधान उपलब्ध होता है।

इस बात को और पुख्ता करने के लिए हमने दिल्ली का उदाहरण देखा, जहां प्री-स्कूल के बच्चों पर एक प्रयोग किया गया। प्रयोग में यह देखा गया कि क्या वे बच्चे गणित का ऐसा सहज स्वाभाविक-सा सवाल हल कर सकते हैं, जिसके लिए गणित का सैद्धांतिक ज्ञान होना जरूरी नहीं है। हमने पाया कि दिल्ली की झुग्गी-झोपड़ियों के बच्चों का प्रदर्शन, हार्वर्ड विश्वविद्यालय के आसपास रहने वाले पीएचडी धारकों के बच्चों जैसा ही था। साफ है कि हमारे बच्चों में प्रतिभा की कमी नहीं है। कमी कुछ और है। कमी है स्कूली शिक्षा प्रणाली की।

मैं समझता हूं कि इस समस्या का जवाब हम सब जानते हैं। पूरी तरह नहीं, तो आंशिक जवाब तो जानते ही हैं और जवाब है कि शिक्षा का अधिकार कानून में बताई गई आवश्यक सामग्रियों (इनपुट्स) को हटा दें। उनकी जगह 'परिणाम आधारित नियमन' को लागू करें, जिसमें फोकस इस बात पर हो कि सभी बच्चों में कुछ आधारभूत कौशल हो। छठी कक्षा तक केवल आधारभूत कौशल पर ही ध्यान दिया जाए। हमें सरकारी स्कूली शिक्षा प्रणाली को भी समेटने की ओर बढ़ने की जरूरत है। जैसे मध्य प्रदेश में सरकारी स्कूलों के बच्चों को नजदीक के दूसरे स्कूलों में भेजा जा रहा

है। हालांकि इसके परिणामस्वरूप कुछ बच्चे स्कूल छोड़ रहे हैं, लेकिन अध्यापन की गुणवत्ता में सुधार आ रहा है। एक बार हम समझ जाएं कि सरकारी स्कूली प्रणाली सिमटने लगी है तो फिर हमें उन स्कूलों में भर्ती को भी कम करने और माध्यमिक स्कूलों में अधिक पैसा लगाने की जरूरत है, जहां हमें लगता है कि शिक्षकों की कमी है, विशेष रूप से विज्ञान के शिक्षकों की। इसलिए मैं समझता हूं कि ऐसे विशिष्ट कार्यक्रम से जरूर मदद मिलेगी।

2. स्वास्थ्य सेवाएं

हम एनसीडी (गैर–संक्रामक रोग) संकट की ओर बढ़ रहे हैं। इसका एक कारण यह भी है कि अब हम ज्यादा उम्र तक जीने लगे हैं, मतलब जीवन प्रत्याशा बढ़ रही है। पहला चरण कैंसर जैसी गैर–संक्रामक बीमारियों की ओर संकेत करता है कि आप 55 या 65 की उम्र तक जीते हैं और आज यही हो रहा है।

जहां एक तरफ यह अच्छी खबर है कि लोग ज्यादा जी रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ यह भी सच है कि हममें से बहुत कम लोगों की डाइट अच्छी है और बहुत कम लोग कसरत करते हैं। यह भी सब जानते हैं कि हम दुनिया के उन देशों में से एक हैं जहां मधुमेह (डायबिटीज), ब्लड प्रेशर और जीवनशैली से जुड़ी दूसरी बीमारियां सबसे ज्यादा हैं। इनसे निपटना बहुत महंगा होता जा रहा है। इससे सिर्फ उत्पादकता ही कम नहीं होगी, बल्कि लोगों का पैसा और वक्त दोनों बर्बाद होंगे। इसके तार बचपन में कुपोषण से जुड़े हैं। यह देखा गया है कि जो बच्चे बचपन में कुपोषित रहे हैं और बड़े होने पर उन्हें पोषक आहार मिला है, उनके जीवनशैली से जुड़ी बीमारियों की चपेट में आने का खतरा ज्यादा रहता है। इसलिए जब बचपन में आप कुपोषित होते हैं तो इसका असर आगे चलकर पड़ता है। इसके अतिरिक्त, समस्या यह भी है कि एंटीबायोटिक्स प्रतिरोधकता बढ़ रही है।

हमारे सामने मुंह बाए खड़ी इन तमाम समस्याओं को देखते हुए, तृतीयक स्वास्थ्य सेवाओं पर फोकस करना थोड़ा अटपटा लगता है। स्वास्थ्य सेवाओं पर इस सरकार की प्रमुख योजना– 'आयुष्मान भारत योजना' पूरी तरह तृतीयक स्वास्थ्य सेवाओं पर केंद्रित है। इसमें कोई बुराई नहीं है, क्योंकि तृतीयक स्वास्थ्य सेवाएं वाकई बहुत महंगी हैं। एक बार आप किडनी प्रत्यारोपण के लिए अस्पताल में भर्ती हो जाइए, यह बहुत महंगा पड़ता है। इसलिए इसे सस्ता करने के उपाय करना अच्छा है और आयुष्मान भारत योजना इसीलिए है। लेकिन इससे स्वास्थ्य की समस्या खत्म नहीं होती, बल्कि यह योजना स्वास्थ्य पर खर्च की समस्या का समाधान करती है।

इससे स्वास्थ्य में सुधार नहीं आने वाला है। स्वास्थ्य में सुधार तब आएगा, जब प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाएं बेहतर होंगी और हमें इसी क्षेत्र में काम करने की जरूरत है। समस्या यह है कि हमारी अधिकांश स्वास्थ्य सेवाएं झोलाछाप डॉक्टरों द्वारा दी जाती हैं, जिनके पास मेडिकल की योग्यता नहीं होती है या कोई योग्यता होती है तो उतनी नहीं होती कि उन्हें प्रैक्टिस करने की अनुमति दी जा सके।

आंकड़े गवाह हैं कि औसतन हर गांव में बिना डिग्री वाले करीब तीन स्वास्थ्य सेवा प्रदाता हैं। पांच में से एक गांव में एक एमबीबीएस डॉक्टर है। इसलिए ज्यादातर गांव ऐसे हैं, जहां कोई एमबीबीएस डॉक्टर है ही नहीं और इनमें से ज्यादातर लोग गैर–कानूनी रूप से प्रैक्टिस कर रहे हैं। उनका पता लगाने का भी कोई तरीका नहीं है, क्योंकि सिस्टम में उनका अस्तित्व ही नहीं है। लेकिन यदि आप वहां जाएं तो आपको परामर्श के लिए उनमें से वही एक व्यक्ति मिलेगा। वह व्यक्ति जो आपकी बीमारी खतरनाक स्तर पर पहुंचने से पहले उसकी जांच कर उसकी पहचान कर सकता है, उन्हीं अप्रशिक्षित स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं में से एक है। इसलिए अगर आप ऐसे व्यक्तियों तक नहीं पहुंच पा रहे हैं तो आप वस्तुत: एक ऐसा हाथ काट रहे हैं, जो आपको सही लोगों तक पहुंचा सकता है।

इसके मद्देनजर, हमें सबसे पहले ऐसे प्रैक्टिशनरों को चिह्नित करना होगा और लगातार जांच के जरिए उनका नियमन करना होगा। अगर वे गलत तरीके से काम कर रहे हैं तो हम उन्हें बंद करने की कोशिश कर सकते हैं। यदि हम ऐसे लोगों की सही तरीके से पहचान कर पाएं तो लोगों का भी साथ मिलेगा। क्योंकि हम यह साबित कर सकते हैं कि लोग अधिक प्रशिक्षित प्रैटिक्शनर से इलाज कराना पसंद करते हैं, उन्हें अधिक भुगतान करने के लिए भी तैयार हैं और उनकी अधिक कद्र भी करते हैं। इसलिए यह मानकर काम करते रहना कि ऐसे गैर–कानूनी प्रैक्टिशनर हैं ही नहीं, महत्त्वपूर्ण यह है कि ऐसे प्रैक्टिशनरों की जांच की जाए, उन्हें प्रशिक्षित किया जाए और उन्हें अधिक सक्षम बनाया जाए। क्योंकि यदि हम यह मान लेते हैं कि ऐसे प्रैक्टिशनर हैं ही नहीं तो हम उनसे कुछ करा ही नहीं सकते हैं। साथ ही, एंटीबायोटिक प्रतिरोधकता से निपटने की भी जरूरत है, क्योंकि यह हमें धीरे–धीरे खत्म कर देगी। हम समुचित प्रेस्क्रिप्शन के बिना फार्मेसी तक जाकर नवीनतम एंटीबायोटिक भी नहीं खरीद सकेंगे। मगर हम सब जानते हैं कि हम ऐसा करते रहे हैं। मैं समझता हूं कि एंटीबायोटिक प्रतिरोधकता से निपटने के लिए हमारे लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि हम ऐसा न कर पाएं।

3. नौकरियां

अब हम अपने अगले विषय पर आते हैं– रोजगार या नौकरियां। नौकरियों के मामले में मेरी इस बात से सभी सहमत होंगे कि हम वैसी नौकरियों का सृजन नहीं कर पा रहे हैं, जैसी नौकरियों की हमें जरूरत है।

आप उद्योग जगत में लोगों से बात कीजिए। आपको सुनने को मिलेगा कि 'हमें वैसे लोग ही नहीं मिल रहे, जैसे हम चाहते हैं'। वस्तुत: वे यह भी कहते हैं कि हम 'मानव संसाधन की कमी वाली अर्थव्यवस्था हैं', क्योंकि अच्छा काम करने वाले लोग बड़े महंगे मिलते हैं। लेकिन ऐसा कैसे हो सकता है? काम करने वालों की कीमत इतनी ऊंची कैसे हो सकती है, यहां तक कि व्हाइट कॉलर जॉब में भी? हमारे देश में व्हाइट कॉलर जॉब्स बहुत कम कर्मचारी संरक्षण वाली हैं। श्रम कानून अधिकांश ब्लू कॉलर जॉब्स पर लागू होते हैं। व्हाइट कॉलर जॉब्स के लिए बहुत सख्त श्रम कानून नहीं हैं। मैं इससे सहमत हूं कि कुछ संगठनों में श्रमिक संघों ने कुछ नियम बनाकर लागू किए हैं, लेकिन समग्र रूप में देखा जाए तो व्हाइट कॉलर जॉब करने वाले कर्मचारी की स्थिति बहुत कमजोर है।

तो हम एक ही समय में श्रम बहुल और अल्प श्रम वाले देश कैसे हो सकते हैं?

हम मेक इन इंडिया की बात करते हैं। हम वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला का हिस्सा बनने की बात करते हैं। श्रम कानूनों को तर्कसंगत बनाने की बात करते हैं। बुनियादी ढांचे को सुधारने की बात करते हैं, बैंकिंग क्षेत्र में सुधार की बात करते हैं, व्यवसाय सुगमता आदि की बात करते हैं। यह सब अच्छा है। देश की खातिर यह सब होना चाहिए। लेकिन हमें इस तथ्य को भी मानना होगा कि ये सभी आपूर्ति संबंधी कारक हैं और इन सभी कार्यों में श्रम की मांग बढ़ेगी। लेकिन लोगों को ऐसा क्यों लगता है कि देश में श्रम की कमी है?

इस गुत्थी को समझने के लिए दो चीजें समझना जरूरी है। एक तो यह कि श्रम बल में महिलाओं की भागीदारी बहुत कम है। वस्तुत: यह दुनिया में सबसे कम है और गिर रही है। दूसरी यह कि जिन लोगों ने 10 साल तक शिक्षा ली है (10 साल तक स्कूल गए हैं), उनमें 26 की उम्र के 20% लोग काम नहीं कर रहे हैं। ऐसा इसलिए नहीं है कि पर्याप्त संख्या में नौकरियां नहीं हैं, बल्कि इसलिए, क्योंकि इसी उम्र के ऐसे लोग जो 10 साल से कम अवधि तक स्कूल गए हैं या 10वीं तक पढ़े हैं, उनमें से लगभग सभी लोग काम कर रहे हैं। यह भी दिलचस्प है कि 32 साल की उम्र के लगभग सभी लोग काम कर रहे हैं, क्योंकि 32 साल की उम्र के लोगों के बीच हमारी बेरोजगारी दर मात्र 2% है। इसलिए हर कोई उस उम्र में काम कर रहा है।

ऐसा नहीं हो सकता कि 20 साल की उम्र के लोगों के लिए नौकरियां नहीं हैं, बल्कि वस्तुस्थिति यह है कि उन्हें नौकरियां चाहिए ही नहीं। इसका मतलब यह हुआ कि हम उन्हें वे नौकरियां दे रहे हैं, जो वे नहीं चाहते। श्रम आपूर्ति समस्या इसलिए भी है कि हम लोगों को ऐसी नौकरियां ऑफर कर रहे हैं, जो वे करना नहीं चाहते। एक तरफ, कंपनियां ट्रेनी भर्ती करना चाहती हैं, जो बीस एक साल की उम्र में आएं और काम करते हुए सीखें। लेकिन ऐसे में किंचित शिक्षित लोग बैठे रह जाते हैं, क्योंकि वे लोग ये नौकरियां नहीं करना चाहते हैं। परिणामत: टर्नओवर बढ़ जाता है, कामगारों का बर्ताव बुरा होता जाता है और प्रशिक्षण व्यर्थ चला जाता है।

हमने एक प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्यांकन किया। सरकारी सहयोग से आयोजित एक प्रशिक्षण कार्यक्रम में 550 प्रशिक्षुओं को प्रशिक्षण दिया गया। 6 महीने का प्रशिक्षण खत्म होने के बाद उनमें से केवल 37 लोग यानी करीब 7.5% लोग वह काम कर रहे थे, जिसके लिए उन्हें प्रशिक्षण दिया गया था। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के नाकाम रहने की वजह उन लोगों के जवाब में छिपी है। हमने प्रशिक्षण प्राप्त उन लोगों से पूछा, आप नौकरी क्यों नहीं करना चाहते?, उन्होंने जवाब दिया, हमें यह नौकरी पसंद नहीं है।

हमारा श्रम इसीलिए महंगा है। समस्या की जड़ यह है कि हर कोई सरकारी नौकरी चाहता है। हमने राजस्थान में एक सर्वे के दौरान लोगों से पूछा कि आप किस तरह की नौकरी चाहते हैं, और एक मध्यमार्गी जवाब यही था कि उन सभी को सरकारी नौकरी चाहिए। सरकारी नौकरी ही आदर्श नौकरी है, क्योंकि वेतन अच्छा है और आम धारणा यह

है कि यह आराम की नौकरी होती है। इसीलिए जिन लोगों में उद्यमिता की संभावनाएं हैं, जो लोग उद्यमी बन सकते हैं, वे भी उद्यमी नहीं बनते हैं।

रेलवे में निचले स्तर की 90,000 नौकरियों के लिए 2 करोड़ 80 लाख लोगों ने आवेदन किया। 27 नौकरियों के लिए 3 लाख आवेदन आए। ऐसी खबरें आप सुनते रहे होंगे। ऐसा इसलिए, क्योंकि यह कहीं अधिक आकर्षक है। लोगों की आम धारणा है कि वे प्रतियोगी परिक्षाएं देंगे और श्रम बाजार का रुख नहीं करेंगे। फिर 30 साल उम्र होने पर जब वे प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए पात्र नहीं रहेंगे या उन परीक्षाओं के सभी प्रयास पूरे हो चुके होंगे, तब वे नौकरियां ढूंढ़ना शुरू करेंगे और इसलिए वे नौकरी कर रहे हैं।

हमारे यहां श्रम आपूर्ति की समस्या है। साथ ही श्रम मांग की भी समस्या है। हम अच्छे वेतन वाली ऐसी नौकरियों का सृजन नहीं कर रहे हैं, जैसी हम चाहते हैं। और मैं समझता हूं कि सामान्य नौकरियां भी उतनी तेजी से नहीं बढ़ रही हैं।

अब व्यापार को ही लीजिए। हम व्यापार में जो कुछ भी डिलीवर करते हैं, उसकी कीमत में श्रम की लागत का बहुत छोटा-सा हिस्सा होता है। उदाहरण के लिए, अमेरिका में बिकने वाले किसी खिलौने को लीजिए। यह 10 डॉलर में बिकता है तो इसमें श्रम लागत सिर्फ 50 सेंट ही है। अगर हम श्रम लागत आधी घटा भी दें यानी 25 सेंट कर दें तो भी हम उस खिलौने की कीमत पर कितना बचा लेंगे? तो अब आप एक नए आपूर्तिकर्ता बन जाते हैं और उस खिलौने को 10 डॉलर के बजाय 9 डॉलर 75 सेंट में बेचते हैं। मुझे नहीं लगता कि हमारी कंपनियां कम कुशल विनिर्माण में असाधारण रूप से अधिक प्रतिस्पर्धी हो पाएंगी। मुझे नहीं लगता कि इस तरह हम अपने तैयार माल का निर्यात बढ़ा पाएंगे। हालांकि हम घरेलू बाजार में प्रगति कर सकते हैं। इसलिए मुझे यह कहना तार्किक नहीं लगता कि निर्यातक के रूप में हम चीन को पीछे छोड़ पाएंगे।

यह सब देखते हुए, मुझे लगता है कि नौकरियों के सृजन के लिए यदि हम कुछ ऐसे विशेष आर्थिक क्षेत्र बना पाते जो रियल एस्टेट की अनावश्यक परियोजना बनकर न रह जाए। उन क्षेत्रों के लिए भूमि, परिवहन और पर्यावरण आदि संबंधी त्वरित मंजूरियां मिल जाएं तो बेहतर होगा।

मेरा दूसरा सुझाव यह है कि हमें ऐसी सरकारी नौकरियों की और अधिक जरूरत है, जिनमें कम आराम हो। जैसे सरकारी नौकरियों के लिए हम एक अप्रेंटिसशिप कार्यक्रम चला सकते हैं और सभी सरकारी नौकरियों में 5 साल तक अप्रेंटिसशिप को अनिवार्य बना देते हैं। मुझे लगता है कि इससे सरकारी नौकरियों के प्रति लोगों का रवैया बदलेगा और वे अपने आपको श्रम बाजार में भी झोंकेंगे, क्योंकि प्रतियोगी परीक्षा का विकल्प न रहने पर नौकरी तो उन्हें करनी पड़ेगी। सबसे महत्त्वपूर्ण है कि इससे उन्हें ऐसी नौकरी मिलेगी, जहां उन्हें कार्य अनुभव का लाभ मिलेगा और वे अधिक समय तक काम करेंगे। इससे उनके काम के घंटे 20%-30% तक बढ़ सकते हैं।

आखिर में मैं यही सुझाऊंगा कि सरकारी नौकरियों के लिए आवेदकों की एक निर्धारित सीमा रहे और एक समय सीमा भी निर्धारित की जाए। जैसे यह नियम बना दिया जाए कि किसी एक सरकारी नौकरी के लिए अधिकतम केवल 2 बार ही आवेदन किया जा सकता है। इससे उन लोगों पर भी नकेल कसी जा सकेगी जो 20–30 साल की अपनी पूरी उम्र सरकारी नौकरी की परीक्षाएं देते हुए निकाल देते हैं। इससे ये परीक्षाएं आयोजित करने में होने वाला सरकारी खर्च भी बचेगा और अधिक लोगों को नौकरियां दी जा सकेंगी।

4. सामाजिक सुरक्षा

अब मैं सामाजिक नीति के एक और महत्त्वपूर्ण पहलू की ओर बढ़ता हूं– सामाजिक सुरक्षा। हमारे देश में मुख्यतः दो सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम हैं। एक, नरेगा और दूसरा, सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस)। दोनों ही गरीबों को लक्ष्य कर चलाए गए कार्यक्रम हैं। लेकिन इन कार्यक्रमों में एक बड़ी आबादी को लक्ष्य नहीं किया गया।

हमारी सफलता के उदाहरणों में से एक यह है कि हमारी अर्थव्यवस्था के एक बहुत छोटे–से हिस्से में गरीब लोग हैं। तथापि, अर्थव्यवस्था में एक ऐसा तबका है, जो बहुत अधिक गरीब नहीं है, लेकिन इस तबके के लोग बड़े पैमाने पर प्रभावित होते हैं। इस तबके के लोगों में बहुत असंतोष है। विशेष रूप से, अगर आप किसान आंदोलनों को देखें तो उनमें से ज्यादातर किसान ऐसे हैं, जिनके पास अपनी कुछ जमीन है और जिनकी बड़ी आर्थिक समस्याएं हैं।

हमें इस बात को मानना शुरू कर देना चाहिए कि असल में यही लोग सामाजिक सुरक्षा के दावेदार हैं। वरना असंतुष्ट लोगों की संख्या लगातार बढ़ती जाएगी और वे विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों में खुद को शामिल किए जाने की मांग को लेकर विरोध करते रहेंगे। इसलिए हमें सबसे पहले यह मानने की जरूरत है कि वास्तविक समस्याएं ये हैं और हमें इस बारे में कुछ करने की जरूरत है।

इन समस्याओं को सुलझाने के लिए वर्तमान में अलग–अलग तरह की कई राहत योजनाएं चलाना, कर्ज माफी, आरक्षण बढ़ाना, विनाशकारी नतीजों वाली अपर्याप्त सब्सिडी देना आदि जैसे तरीके अपनाए जाते हैं, जबकि वास्तविक संकट बिजली, उर्वरक और जल क्षेत्र में है। आप पंजाब को लीजिए। आप देखेंगे कि वहां लोगों को बारिश आने तक धान की बुआई से रोक दिया जाता है, क्योंकि पानी की बड़ी किल्लत है। पंजाब में पराली जलाना भी एक बड़ी समस्या बन गया है, जिससे पूरा उत्तर भारत प्रदूषित होता है। लेकिन हमारे पास इसका कोई उपाय नहीं है। यही सब मुद्दे हैं, जो हमें बताते हैं कि हम कहां हैं, क्योंकि हम न सिर्फ लोगों को कुछ डिलीवर करने में असमर्थ हो रहे हैं, बल्कि हम उनसे कुछ छीन भी रहे हैं। मैं समझता हूं कि बहुत से ऐसे झटके हैं, जो व्यक्तिगत नियंत्रण से परे हैं और हमें इनसे निपटने के लिए किसी न किसी रूप में तैयार रहना होगा। इनमें वैश्विक कीमतों में परिवर्तन, मौसम और मानवजन्य अन्य झटके हो सकते हैं।

मैं समझता हूं कि मुद्रास्फीति की हमारी मौजूदा व्यवस्था ऐसी है कि यदि पेट्रोलियम की कीमतें बढ़ती हैं तो हमें कीमतें कम करने के लिए कोई उपाय खोजना पड़ता है। हम जो उपाय करते हैं वह कृषि क्षेत्र को प्रभावित करता है। हम निर्यातों पर रोक लगा देते हैं, तब भी सामान आयात करते रहते हैं, जबकि हमारे पास उसका सरप्लस है और इस प्रकार भी हम अपने कृषि क्षेत्र को प्रभावित करते हैं। मुझे लगता है कि इससे सिर्फ असंतोष बढ़ेगा, जिससे निपटना हमारे लिए मुश्किल होगा।

हमारे यहां एक 'फसल बीमा योजना' है। लगता नहीं है कि यह योजना ठीक तरीके से काम कर रही है। क्योंकि यह बेहतर तरीके से बनाई ही नहीं गई है और ऐसा करना बहुत मुश्किल भी है, क्योंकि यह पता लगाना ही अपने आप में मुश्किल भरा काम है कि किसान कौन है। उसका उत्पादन कितना होने जा रहा है, उस उत्पादन के लिए उसे कितने रुपए के बीमा की जरूरत है, आदि।

इसलिए मेरा प्रस्ताव है कि एक नया सामाजिक ढांचा बनाया जाना चाहिए, जहां सरकार यह स्वीकार करे कि वह विशिष्ट समूहों को समग्र क्षमता के अनुसार उनकी सहायता करेगी और ऐसे समूहों को चिह्नित करने की एक व्यवस्था बनाए। यह व्यवस्था उनके स्थान, उनके उत्पादन आदि पर आधारित हो सकती है, क्योंकि भौगोलिक पहचान, व्यक्तिगत पहचान से ज्यादा बेहतर होगी। उदाहरण के लिए, यदि कोई गन्ना उत्पादक ब्लॉक है और तब यदि ऐसी कोई नीति है जो गन्ना उत्पादन को कम लाभप्रद बनाती है, तो हम उन्हें इसका हर्जाना दें। ऐसे हर्जाने के लिए हम कोई राष्ट्रीय निकाय बना सकते हैं।

5. शहरीकरण

आज के लिए मेरा अंतिम बिंदु है शहरीकरण। हमारा देश तेजी से शहरीकरण की ओर बढ़ रहा है, क्योंकि हम पहले इसे शहरी नहीं कहते थे। हमारा बहुत सारा शहरीकरण यूपी में 12,000 लोगों के गांवों में है। एक गांव वह है, जहां अमेरिका के मोनटाना राज्य में इससे भी ज्यादा आबादी के बावजूद कोई शहर नहीं है। हम उन्हें गांव कहते हैं, इसलिए हमारा शहरीकरण नहीं हो रहा था। लेकिन अब वस्तुत: हमें ऐसे शहर मिल रहे हैं, जिनका न तो बुनियादी ढांचा अच्छा है और न ही प्रशासन व्यवस्था। या ऐसे शहर मिल रहे हैं, जिनके पास अपना बुनियादी ढांचा खड़ा करने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं हैं।

बहुत से छोटे-छोटे शहर अभी आकार ले रहे हैं, जिनका बुनियादी ढांचा बहुत खराब गुणवत्ता का है और यह इनके बनने की प्रक्रिया में ही एक बहुत बड़ी चूक हो रही है। क्योंकि जैसे ही आप किसी आबादी के लिए अच्छी सड़कों और अन्य बुनियादी ढांचे के बिना कोई शहर विकसित करते हैं, तो उस शहर का विस्तार होने के बाद आप सड़कें नहीं बना सकते, क्योंकि आप अटक जाते हैं। इसलिए मुझे लगता है कि हम जिस तरीके से शहरीकरण कर रहे हैं, उस बारे में हमें सोचने की जरूरत है, क्योंकि वर्तमान दृष्टिकोण लगभग उपेक्षापूर्ण है।

हम उन संसाधनों की बात करते हैं, जो हमारे पास नहीं हैं और 74वें संशोधन को लागू करने की राजनीतिक असंभवता की बात करते हैं, जो शहरों में पंचायती राज व्यवस्था को लागू करने की बात करता है। हम वस्तुत: विनाशकारी स्थिति का सामना कर रहे हैं। हमारे शहर रहने लायक नहीं हैं। कचरे का समुचित निस्तारण नहीं है। जल आपूर्ति नहीं है, सीवर सिस्टम नहीं है। शहरों में तब्दील हो रहे गांवों में जरूरी शहरी बुनियादी ढांचा नहीं है।

मैं समझता हूं कि 74वां संशोधन ही मुख्य उपाय है। हमें शहरी प्रबंधकों की जरूरत है, जो वास्तविक प्रोफेशनल हैं और इन उभरते हुए शहरों का प्रबंधन कर सकते हैं। हमें संसाधनों की जरूरत है, समस्याओं से निपटने के लिए नियमन की जरूरत है। हमें ऐसे शहरों की जरूरत है, जो संसाधन जुटाने के लिए एक संघीय ढांचे के भीतर भूमि की रणनीतिक खरीद–बिक्री करें और रियल एस्टेट टैक्स जुटाएं। दुनियाभर में शहर ऐसे ही चलते हैं। कुछ निश्चित नियम होते हैं, जिनका पालन हम नहीं कर रहे हैं और इससे बाद में समस्या आएगी।

अंत में निष्कर्ष रूप में मैं यही कहूंगा कि विभिन्न समस्याओं का सामना करने के बावजूद हम एक देश के रूप में बेहतर स्थिति में हैं। बहुत से गांव इसीलिए शहरों में तब्दील हो रहे हैं, क्योंकि उन गांवों में लोग अब कारें खरीद रहे हैं। उन गांवों में कारें तो आ गई हैं, लेकिन उन कारों के लिए अच्छी सड़कें नहीं बन पाई हैं। इसी तरह, नई जीवनशैली से जुड़ी बीमारियां लोगों को लगती जा रही हैं, क्योंकि अब वे ऐसी जीवनशैली जी रहे हैं, जो पहले नहीं थी। अब ऐसी स्थिति नहीं है कि लोगों को खाने के लिए रोटी नहीं मिल पा रही है। लेकिन ये सब वर्तमान की समस्याएं हैं और हमें इनके समाधान अभी तलाशने की जरूरत है, क्योंकि समाधान तलाशने के अलावा दूसरा कोई विकल्प नहीं है।

धन्यवाद!

एक्ज़िम बैंक
EXIM BANK
भारतीय निर्यात-आयात बैंक
EXPORT-IMPORT BANK OF INDIA

केंद्र एक भवन, 21वीं मंज़िल, विश्व व्यापार केंद्र कॉम्प्लेक्स, कफ़ परेड, मुंबई – 400005.
फोन: +91 22 22172600 फैक्स: +91 22 22182572

www.eximbankindia.in/cdal

#EXIMCDAL34

हमें फॉलों करें